बच्चा इस पांव के नीचे वाले स्थान में शरण लिए हुए था। हाथी का पांव अधर में लटक रहा था।

दो दिन तक जंगल जलता रहा। तीसरे दिन आग शान्त हुई। सभी जानवर अपने-अपने स्थानों की ओर लौटने लगे। खरगोश का बच्चा भी लौट रहा था। सुमेरुप्रभ ने नीचे देखा तो स्थान को खाली समझकर जाने की तैयारी करने लगा। उसने पांव को सीधा जमीन पर रखना चाहा, पर पांव जमीन पर न टिका। पांव अकड़ चुका था। अब हाथी ने जोर देकर रखना चाहा, तो भारी शरीर के कारण संभल न सका और भूमि पर गिर गया।

तीन दिन की भूख-प्यास के कारण पुनः न उठ सका। पर इस हाल में भी उसके मन में अपूर्व शान्ति थी, क्योंकि उसने एक छोटे से जीव पर दया की थी।

प्रभु महावीर ने मेघ के पूर्वभव की सारी कथा सुना दी। फिर उन्होंने निष्कर्ष करते हुए फरमाया- "पूर्वभव में खरगोश पर करुणा करने वाले हाथी तुम थे। पशु के भव में करुणा के कारण तुम्हें राज्य परिवार का सुख-वैभव मिला। निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने को मिला। संयममार्ग की मामूली सी बाधा से घबरा गए हो।"

प्रभु महावीर के उपदेश से मेघ मुनि पुनः जागृत हो गए और अब संयम पथ पर पुनः बढ़ने लगे। लम्बे समय तक तप व साधना की। जिसके परिणाम स्वरूप विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

महायोगी नन्दीषेण

यह भी राजा श्रेणिक के पुत्र थे। भगवान महावीर के उपदेश से इनके मन में वैराग्य भावना जागृत हो गई। पिता राजा श्रेणिक ने इन्हें मुनि बनने की आज्ञा प्रदान कर दी।

परन्तु जब यह मुनि बन रहे थे तो उसी समय आकाशवाणी हुई- "नन्दीषेण! अभी तुम्हारे मुनि बनने का समय नहीं आया। अभी तुम्हारा भोगावली कर्म शेष है।"

नन्दीषेण का इरादा दृढ़ था। उसे दूसरी भी देववाणी ने रोका। नन्दीषेण भावना के प्रवाह में बह रहे थे। देववाणी सुनकर उन्होंने कोई परवाह नहीं की। अपने पूर्व फैसले को ध्यान में रखकर वह मुनि बन गए।

अब राजकुमार नन्दीषेण मुनि बनकर साधना करने लगे। वह देवता की वाणी को गलत सिद्ध करने के लिए तप करने लगे जिसके प्रभाव से वह अनेक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बन गए।

पर होनी प्रबल है। यह कब, किस रूप में रंग दिखाए इसे व्यक्ति नहीं जान पाता। एक दिन मुनि नन्दीषेण गोचरी को गए हुए थे। नगर में भोजन के लिए घूम रहे थे। शुद्ध भोजन की तलाश में उन्होंने एक बड़ा भवन देखा, फिर सोचा- किसी सेठ साहूकार का घर होगा। भिक्षा शुद्ध मिल जाएगी। पर यह घर तो वेश्या का था। वेश्या के भवन को वह सेठ का महल समझ गए थे। मुनि ने अपनी भाषा में "धर्मलाभ" कहा।

अन्दर कोई सेठ नहीं था। यहां धर्म-कर्म का कोई नामोनिशान नहीं था। अन्दर से सजी-धजी हुई गणिका बाहर आई। उसने कहा- "यहां धर्मलाभ का काम नहीं है। यहां तो अर्थलाभ से कार्य पूर्ण होते हैं। जिसके पास धन-सम्पत्ति है, उसे यहां सब कुछ मिल सकता है, और जो दरिद्र और दीन है उसके लिए यहां कोई स्थान नहीं है।"

मुनि का शरीर तपस्या के कारण सूख चुका था। उनकी कृश काया शरीर को देखकर वेश्या हंसने

प्रमाण निरयावलिकासूत्र में मिलता है, जब उन्होंने राजा कोणिक की रानी चेलना की दोहद समस्या को हल किया था। इसी तरह इन्होंने रानी धारिणी का दोहद भी पूर्ण करवाया। इनकी बुद्धि के कारनामे अकबर-बीरबल के संवाद की तरह हैं। प्रभु महावीर के यह परम श्रावक थे। बाद में यह भी साधु बन गए।

अभयकुमार ने एक बार मानव जाति को समझाया था कि सबसे महंगा भोजन मांस है। एक बार राज्यसभा में चर्चा हुई कि "सस्ता भोजन कौन सा है?" ज्यादा लोगों ने मांस कहा।

अभय कुमार ने एक नाटक रचा। फिर वह उन सब लोगों के पास एक तोला मानव मांस के लिए गया। उसने कहा- "राजा बीमार है, उन्हें एक तोला मानव हृदय का मांस चाहिए। बदले में कितनी भी कीमत ले लीजिए।"

सभी मांसाहारियों ने उल्टे अभयकुमार को धन दिया, जो अभयकुमार ने राज्यसभा में राज्य के सम्मुख प्रस्तुत किया। फिर उसने कहा- "इतने पैसे में भी कोई एक तोला मानव मांस देने को तैयार नहीं है।"

इसी तरह एक बार एक लकड़हारा गरीबी के कारण प्रभु महावीर के शिष्य गणधर सुधर्मा स्वामी के पास साधु बन गया। सब उसका अपमान करते। सब कहते- "काम न करने के कारण यह साधु बना है।"

अभयकुमार ने एक लाख स्वर्ण मुद्राएं साथ लीं। चौराहे पर घोषणा करवायी- "जो व्यक्ति अग्नि जलाने का त्याग करेगा और ब्रह्मचर्य का पालन करेगा वह इन मुद्राओं को ले ले।"

सारा दिन बीत गया। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं आया जो इन दोनों का त्याग कर सके। अभयकुमार ने कहा- मुनिधर्म का पालन बहुत मुश्किल है। वह तो सारी उम्र पांच महाव्रतों, पांच समितियों, तीन गुप्तियों का पालन करते हैं। यह लकड़हारा कितना पूजनीय है, जो कठोर मुनिधर्म का पालन कर रहा है।"

चौदहवां वर्ष

प्रभु महावीर संसार के कल्याण के लिए घर से निकले थे। संसार में फैले अंधकार को देख उनका मन इतना दुःखी हुआ कि वह जंगल में साढ़े बारह वर्ष के लिए ध्यानस्थ हुए। अनेक कष्टों, उपसर्गों के बाद उन्हें जो केवलज्ञानरूपी शाश्वत अमृत मिला था, वह उन्हें बांटने में दिन-रात एक कर रहे थे। उनका प्रथम वर्ष सफलताओं से भरा हुआ था। यह वर्ष क्रान्तिकारी वर्ष था। समाज को एक बदलाव इनके अहिंसक उपदेश से मिल रहा था।

प्रभु महावीर ने राजगृह में धर्म-प्रचार करने के बाद ग्राम-ग्राम, नगर-नगर विचरना शुरू किया। वह विदेह देश के गांवों, नगरों को अपनी चरण-रज से पवित्र करते हुए अपनी जन्म भूमि के एक भाग ब्राह्मण क्षत्रिय कुण्डग्राम में पधारे। वहां का बहुशाल चैत्य प्रभु महावीर की देशना का स्थल था। लोगों को वर्द्धमान के आगमन की सूचना मिली।

ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानन्दा की दीक्षा

उस गांव में ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानंदा ब्राह्मणी रहते थे। ऋषभदत्त का गोत्र कोडाल था। देवानंदा जालंधरीय गोत्रीय थीं।[8] वह चार वेदों, स्मृतियां, वेदांग, इतिहास व व्याकरण का ज्ञाता होने के साथ-साथ श्रमणोपासक भी था। वह परम्परा से क्रियाकांडी ब्राह्मण था, पर वह श्रमणों के प्रभाव से ब्राह्मणवाद से दूर हो गया था।

प्रभु महावीर के दर्शन करने वह पहुंचा। भगवान महावीर को वन्दना कर वह निर्ग्रंथ प्रवचन सुनने हेतु बैठ गया। उपदेश समाप्त होते ही ऋषभदत्त ने प्रव्रज्या लेने की इच्छा व्यक्त की। प्रभु महावीर ने उसे कहा- "जैसी आपकी आत्मा को सुख हो वैसा करो। पर शुभ कार्य में प्रमाद मत करो।"

उधर उसकी पत्नी देवानंदा भगवान महावीर को देखकर रोमांचित होने लगी। उसके स्तनों से दूध की धाराएं छूटने लगीं। आंखों से आनन्द के अश्रु बहने लगे। देवानंदा की यह हालत देखकर गणधर गौतम इन्द्रभूति ने प्रभु महावीर से पूछा- "भगवन्! देवानंदा आपको देखकर रोमांचित क्यो हो गई है? उसके स्तनों से दूध की धारा क्यों बह रही है?"

प्रभु महावीर ने कहा- "गौतम! देवानंदा ब्राह्मणी मेरी माता हैं। मैं इस देवानंदा ब्राह्मणी का पुत्र हूं।"[४] भगवान महावीर ने गणधर गौतम को अपने गर्भ-परिवर्तन की घटना बताई। आचार्य देवेन्द्र मुनि जी अपनी पुस्तक 'महावीरः एक अनुशीलन' के पृष्ठ ४३० पर लिखते हैं- "इतने समय तक भगवान (महावीर) के गर्भ-परिवर्तन की बात किसी को ज्ञात नहीं थी। देवानंदा और ऋषभदत्त ब्राह्मण के साथ सारी धर्मसभा इस घटना को सुनकर आश्चर्यचकित हो गई।"

इस बात का ऋषभदत्त ब्राह्मण व देवानंदा ब्राह्मणी पर गहरा प्रभाव पड़ा। दोनों ने गृह त्यागकर प्रभु महावीर के चरणों में प्रव्रज्या ग्रहण की। दीक्षा से पहले उन्होंने शरीर पर पहने वस्त्राभूषण त्याग दिए। फिर पंच मुष्टिक लोच किया और वन्दन करते हुए दोनों प्रभु के समक्ष आए।

ऋषभदत्त ने प्रार्थना की- "प्रभु! यह संसार जल रहा है। जरा, मरण, रोग, शोक आदि विपदाओं की आग से यह संसार चारों ओर से प्रज्वलित हो रहा है। प्रभु, मुझे इस आग से बचाइए।"

ऋषभदत्त ब्राह्मण को प्रभु महावीर ने अपने श्रमणसंघ में शामिल कर लिया। दीक्षा के पश्चात् मुनि ऋषभदत्त ने ग्यारह अंगों का अच्छी तरह अध्ययन किया। छट्ठम, अट्ठम, दशम आदि अनेक प्रकार के तप किए। लम्बा समय साधु जीवन में गुजारा। अंतिम समय एक मास की संल्लेखना कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

उसकी पत्नी देवानंदा ने भी महासाध्वी चन्दनबाला के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की थी। उसने भी ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। उसने भी लम्बी लम्बी तपस्याएं कर्मक्षय करती हुई मोक्ष की अधिकारी बनी।[५]

जमाली-प्रियदर्शना की प्रव्रज्या

जमाली एक क्षत्रिय राजकुमार था जो सांसारिक रिश्ते प्रभु महावीर की बहिन सुदर्शना का पुत्र था। प्रभु महावीर का भानेज था। प्रियदर्शना प्रभु की सुपुत्री थी। प्रभु महावीर की इस सुपुत्री की शादी जमाली राजकुमार से हुई थी। कुछ ग्रंथों में प्रभु महावीर के ब्राह्मणकुण्डग्राम के स्थान पर क्षत्रियकुण्डग्राम पधारे का वर्णन है पर दोनों परम्पराओं में उनके पधारने का स्थल बहुशाल चैत्य है, जो दोनों गांवों-नगरों के बीच पड़ता था। प्रभु महावीर का उपदेश सुनने जमाली राजकुमार बहुशाल चैत्य में आया। प्रभु महावीर को वन्दन किया। जमाली प्रतिबुद्ध हुआ। उसने प्रभु महावीर से कहा- "प्रभु! आपने जो कहा है वही वस्तुतः सत्य है। मुझे निर्ग्रंथ प्रवचन पर श्रद्धा हो गई है। मैं साधु बनना चाहता हूं। आप मुझे शरण दीजिए।"

प्रभु महावीर ने कहा- "देवानुप्रिय! जैसे आपकी आत्मा को सुख हो, वैसा करो। पर शुभ कार्य में

प्रमाद मत करो।"

जमाली राजमहल आया। माता-पिता से आज्ञा मांगने लगा। माता-पिता ने उसे बहुत समझाया। जमाली ने एक भी न सुनी। उसने 500 राजकुमारों के साथ दीक्षा ग्रहण की। साथ में प्रभु महावीर की सुपुत्री व जमाली की पत्नी भी 1,000 स्त्रियों के साथ साध्वी बनी।

बाद में जमाली निन्हव (प्रवचन के विरोध में चलने वाला) बना। वह प्रभु महावीर का विरोधी हो गया। इसका वर्णन यथा स्थल पर हम करेंगे। कई आचार्यों की मान्यता है कि इस सभा में प्रभु महावीर के बड़े सांसारिक भ्राता राजा नंदीवर्द्धन भी आए थे। उन्होंने भी प्रभु महावीर का उपदेश सुना और प्रभु महावीर को वन्दन कर वह घर लौटे थे।

प्रभु महावीर ने यह वर्षावास वैशाली में किया। जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है यहां का गण-प्रमुख चेटक श्रमणोपासक था। वैशाली की जनता के लिए प्रभु महावीर का नाम नया नहीं था। वैशाली की जनता ने प्रभु महावीर के वर्षावास से अभूतपूर्व लाभ उठाया।

पन्द्रहवां वर्ष

वर्षावास संपूर्ण कर प्रभु महावीर ने वैशाली से वत्स भूमि की ओर प्रस्थान (विहार) किया। गांवों, नगरों को पवित्र कर उन्होंने समाज में फैली बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंका। प्रभु महावीर कोशाम्बी पधारे, जिसे आज कोसम कहते हैं। कोशाम्बी का राजा उदयन एक ऐतिहासिक व्यक्ति था। भारत की तीनों परम्पराओं में उसका वर्णन मिलता है। प्रभु महावीर कोशाम्बी के चन्द्रावतरण चैत्य में पधारे। उस समय वहां का राजा उदयन था। वह राजा चेटक की पुत्री मृगावती का पुत्र था। उसके पास हाथियों की विशाल सेना थी। वह वीणा बजाकर हाथियों को पकड़ा करता था। विपाकसूत्र में उदयन को हिमालय की तरह महान् और प्रतापी बताया गया है।

जब उदयन को भगवान महावीर के कोशाम्बी पधारने का समाचार मिला, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। वह भी राजा कोणिक की तरह सजधज कर भगवान महावीर के समवसरण में आया। उसके साथ उसकी माता मृगावती और उसकी बुआ श्रमणोपासिका जयन्ती भी थी। जयन्ती श्रमणोपासिका अपने पुत्र के साथ बैठी थी। जयंती जीव-अजीव की ज्ञाता तो थी ही, पर साथ में वह परम जिज्ञासु भी थी। वह हर प्रवचन में से जीवन के लिए तत्व खोजने वाली थी।

जयंती का अपना जीवन साधु-सेवा के लिए समर्पित था। हर नए आने वाले साधु की जयंती खूब सेवा करती थी। जब कोशाम्बी में कोई नया साधु पधारता, तो वह सर्वप्रथम जयंती की बस्ती में आता था। वह उन श्रमणों के साथ तत्त्वचर्चा करती थी।

जयंती अर्हत् धर्म की अनन्य उपासिका और जानकर थी। प्रभु महावीर जैसे तीर्थंकर से जो उसने प्रश्न पूछे, वह जैन नारियों के लिए अति गौरव का स्थान रखते हैं। इन प्रश्नों से ज्ञात होता है कि उनका तत्व ज्ञान बहुत गहरा था। सब लोग धर्मसभा की ओर बढ़े जा रहे थे। समवसरण में पहुंचकर सभी लोगों ने सवारियों का त्याग किया। पांच अभिगम छोड़े। फिर सीधे प्रभु महावीर को वन्दन करने राज्य-परिवार आया। प्रभु महावीर की धर्म-देशना चल रही थी। सभी ने प्रभु महावीर के वचनामृत को श्रवण किया।

तीर्थंकर के समवसरण की धरती को स्वर्ग से बढ़कर माना जा सकता है क्योंकि समवसरण

समानता का प्रतीक है। वहां ऊंच-नीच वैर विरोध का कोई स्थान नहीं होता। सभा विसर्जित हो जाने पर भी जयंती अपने परिवार के साथ वहीं ठहरी रहीं। अवसर पाकर धार्मिक चर्चा शुरू करते हुए जयंती ने पूछा- "भगवन्! जीव भारीपन को कैसे प्राप्त होते हैं?"

प्रभु महावीर- "जयन्ती! जीव-हिंसा, असत्य वचन, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि अठारह पाप-स्थानकों के सेवन से जीव भारीपन को प्राप्त होते हैं और चारों गतियों में भटकते हैं।"

जयन्ती- "भगवन्! भवसिद्धिकता (मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता) जीवों को स्वभाव से ही प्राप्त होती है या अवस्था विशेष से?"

प्रभु महावीर- भवसिद्धिकता स्वभाव से ही होती है, अवस्था-विशेष से नहीं। जो जीव भवसिद्धि हैं वे अपने स्वभाव से ही वैसे हैं तथा रहेंगे और जो भवसिद्धि नहीं हैं, वे किसी भी अवस्था में, किसी भी उपाय से भवसिद्धिक नहीं हो सकते।"

जयन्ती- "भगवन्! क्या सब भवसिद्धिक मोक्षगामी हैं?"

प्रभु महावीर- "हां, जो भवसिद्धिक हैं, वे सब मोक्षगामी हैं।"

जयन्ती- "भगवन! यदि सब भवसिद्धिक जीवों की मुक्ति हो जाएगी तब तो यह संसार कालान्तर में भवसिद्धिक जीवों से रहित ही हो जाएगा।"

प्रभु महावीर- "नहीं, जयन्ती! ऐसा नहीं हो सकता। जैसे सर्वाकाश प्रदेशों की श्रेणी में से कल्पना से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश कम करने पर भी आकाश-प्रदेशों का कभी अन्त नहीं होता, इसी प्रकार भवसिद्धिक अनादिकाल से सिद्ध हो रहे हैं और अनन्तकाल तक होते रहेंगे। फिर भी वे अनन्ताकाल होने से समाप्त नहीं होंगे और संसार कभी भी भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा।"

जयन्ती- "भगवन्! सोना अच्छा है या जागना?"

प्रभु महावीर- "कुछ जीवों का सोना अच्छा है और कुछ का जागना।"

जयन्ती- "भगवन्! यह कैसे? दोनों बातें अच्छी कैसे हो सकती हैं?"

प्रभु महावीर- अधर्म के मार्ग पर चलने वाले, अधर्म का आचरण करने वाले और अधर्म से अपनी जीविका चलाने वाले जीवों का सोना ही अच्छा है, क्योंकि ऐसे जीव जब सोते हैं तब बहुत से जीवों की हिंसा करने से बचते हैं तथा बहुतेरे प्राणियों को त्रास पहुंचाने से असमर्थ होते हैं। वे सोते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को दुःख नहीं पहुंचा सकते, अतः ऐसे जीवों का सोना ही अच्छा है और जो जीव धार्मिक, धर्मानुगामी, धर्मशील, धर्माचारी और धर्मपूर्वक जीविका चलाने वाले हैं उन सब जीवों का जागना अच्छा है। कारण, जागते हुए वे किसी को दुःख न देते हुए अपने को तथा अन्य जीवों को धर्म में लगाकर सुखी और निर्भय बनाते हैं, अतः ऐसे जीवों का जागना अच्छा है।"

जयन्ती- "भगवन्! जीवों की सबलता अच्छी या दुर्बलता?"

प्रभु महावीर- "कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ की दुर्बलता।"

जयन्ती- "भगवन्! यह कैसे?"

प्रभु महावीर- "जयन्ती! जो जीव अधर्मी, अधर्मशील और अधर्मजीवी हैं उनकी दुर्बलता अच्छी है, क्योंकि ऐसे जीव दुर्बल होने से दूसरों को त्रास देने में और अपनी आत्मा को पापों से मलिन बनाने में विशेष समर्थ नहीं होते। जो जीव धर्मिष्ठ, धर्मशील, धर्मानुगामी और धर्ममय जीवन बिताने वाले हैं उनकी सबलता अच्छी है। कारण, ऐसे जीव सबल होने पर भी किसी को दुःख न देते हुए अपना तथा

औरो का उद्धार करने में अपने बल का उपयोग करते हैं।''

जयन्ती- ''भगवन्! सावधानता अच्छी या आलस्य?''

प्रभु महावीर- ''बहुत से जीवों की सावधानता अच्छी है और बहुतों का आलसीपन।''

जयन्ती- ''भगवन्! दोनों बातें अच्छी कैसे?''

प्रभु महावीर- जो जीव अधर्मी, अधर्मशील और अधर्म से जीने वाले हैं उनका आलसीपन ही अच्छा है, क्योंकि ऐसा होने से वे अधर्म का अधिक प्रचार न करेंगे। इसके विपरीत जो जीव धर्मी, धर्मानुगामी और धर्म से ही जीवन बिताने वाले हैं उनकी सावधानता अच्छी है, क्योंकि ऐसे धर्म-परायण जीव सावधान होने से आचार्य, उपाध्याय, वृद्ध, तपस्वी, बीमार तथा बाल आदि का वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करते हैं। कुल, गण, संघ तथा साधर्मियों की सेवा में अपने को लगाते हैं और ऐसा करते हुए वे अपना तथा ओरों का भला करते हैं।''

जयन्ती- ''श्रवणेन्द्रिय के वश में पड़े हुए जीव क्या बांधते हैं?''(किस प्रकार के कर्म बांधते हैं?)

प्रभु महावीर- ''जयन्ती! श्रवणेन्द्रिय के वशीभूत जीव आयुष्य को छोड़ शेष सातों ही कर्म-प्रकृत्तियां बांधते हैं। पूर्वबद्ध शिथिल-बन्धन को दृढ़ बन्धन और लघु स्थितिकों को दीर्घ-स्थितिक कर देते हैं, इस प्रकार कर्मों की स्थिति को बढ़ाकर वे चतुर्गति रूप संसार में भटका करते हैं।''

जयन्ती ने इसी प्रकार चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय के वशीभूत जीवों के सम्बन्ध में प्रश्न भी पूछे और भगवान ने उन सबके सम्बन्ध में यही उत्तर दिया।

प्रश्नोत्तरों से जयन्ती को पूर्ण संतोष हुआ। उसने हाथ जोड़कर कहा- ''भगवन्! कृपया मुझे प्रव्रज्या देकर अपने भिक्षुणी संघ में दाखिल कीजिए।''

श्रमण भगवान ने जयन्ती की प्रार्थना को स्वीकृत किया और उसे सर्वविरति सामायिक की प्रतिज्ञा एवं पंच महाव्रत प्रदान कर भिक्षुणी संघ में दाखिल कर लिया।[8]

वत्सभूमि से भगवान ने उत्तरकोसल की तरह विहार किया और अनेक गांव-नगरों में निर्ग्रंथ प्रवचन का उपदेश देते हुए श्रावस्ती पहुंचे। श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य में आपका जो उपदेश हुआ, उसके फलस्वरूप अनेक गृहस्थ जैनसंघ में दाखिल हुए। अनगार सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ आदि की दीक्षाएं भी इसी अवसर पर हुई थीं।

कोसल प्रदेश से विहार करते हुए श्रमण भगवान महावीर फिर विदेह भूमि में पधारे। यहां वाणिज्यग्राम-निवासी गाथापति आनन्द और उनकी स्त्री शिवानन्दा ने आपके समीप द्वादशव्रतात्मक गृहस्थ धर्म स्वीकार किया।

सुमनोभद्र व सुप्रतिष्ठ की प्रव्रज्या

कोशाम्बी में धर्म-प्रचार करने के बाद प्रभु महावीर श्रावस्ती नगरी पधारे। उस समय सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठ ने दीक्षा ग्रहण की। लम्बे समय तक संयम पालन किया। अंतिम समय में सुमनोभद्र ने राजगृह के विपुलाचल पर समाधिमरण द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। सुप्रतिष्ठ मुनि ने भी सत्ताईस वर्ष तक प्रभु महावीर के चरणों में संयम की आराधना कर विपुलाचल पर्वत से सिद्धि प्राप्त की।[9]

गृहपति आनन्द द्वारा श्रावक धर्म की आराधना

अंगशास्त्र में उपासकदशांग सूत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। इस आगम में प्रभु महावीर के दस प्रमुख